Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
ISSN : 2582-0095
doi : https://doi.org/10.32628/GISRRJ

द्वितीय नगरीकरण के उत्कर्ष में लोहे की भूमिका

*जय प्रकाश यादव (असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, इतिहास)
Dr. B.R. Ambedkar Government Degree College Audenya Padariya Mainpuri, U.P
(शोध- छात्र), भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)
**शोध-पर्यवेक्षक
डॉ. दिनेश मांडोत (प्रोफेसर)
इतिहास विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

Article Info

Article History
Accepted : 20 Sep 2024
Published : 05 Oct 2024

Publication Issue :
Volume 7, Issue 5
September-October-2024

Page Number : 01-07

सारांश:

लोहे का आविष्कार मानव के प्रगति के विकास के इतिहास में उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है । विश्व के औद्योगिक विकास का मूलाधार लोहा ही है। उत्खनन में अनेक धातुओं की तरह भारत से लोहे की सामग्रियां भी प्राप्त हुई है। लोहा एक कठोर धातु है, जिससे मनुष्य अपने लिये कठोर भूमि, वन, आक्रामक पशुओं और मनुष्यों से उत्पन्न संकट को टाल सकता था। कठोर भूमि को फाल या टुकडों की सहायता से तोड़ कर वह कृषि कार्य करने तथा इससे बनी सामाग्रियां और उपकरणों द्वारा उत्पादन को विकसित करने में सहायता किया होगा। इस प्रकार सभ्यता का विकास जो प्रथम नगरीकरण के बाद थोडा रूका था वह लोहे के प्रयोग द्वारा अब नवीन गति से विकसित हुआ । सिन्धु घाटी की सभ्यता कास्यं कालीन है, और उसके बाद भारत में लौह युग का प्रारम्भ होता है ।

लौह तत्व से मनुष्य लौह युग के बहुत पहले से परिचित था । हेमेटाइट जिसमें लौह तत्व की प्रधानता है, रंग के लिये पाषाण काल से ही प्रयुक्त होता रहा है। उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार लोहे का ज्ञान किसी न किसी रूप में मेसोपोटामिया' में 3000 ईसा पूर्व के लगभग था, सम्भवतः उसे गलाने की तकनीक का ज्ञान भी उन्हें 2800 ई० पूर्व तक हो गया था । प्रश्न यह उठता है कि, द्वितीय नगरीकरण के उत्कर्ष में लोहे की क्या भूमिका रही होगी ?

शब्दावली : द्वितीय नगरीकरण, लोहा, भूमिका।

परिचय:

भारतीय सभ्यता संस्कृति का इतिहास साहित्यक दृष्टिकोण से अत्यंत समृद्ध है। भारतीय संस्कृति के विकास के साथ-साथ शहरों का भी विकास हुआ। शहर एक ऐसा विशाल जन समुह है, जिसकी जीविका का प्रधान साधन उद्योग तथा व्यापार है। वह व्यवसायिक उत्पादनों के विनिमय द्वारा शहरों एवं शहरी

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

जीवन को निर्देशित करता है। भारत में शहर की आविर्भाव की अत्यन्त प्राचीनता सिंधु सभ्यता से जानी जाती है। आर्यों के आगमन के पहले भारत में शहरों की उत्पत्ति हो चुकी थी। नदियों, समुद्रों के तट पर तथा प्रसिद्ध मार्गों पर व्यापारिक संबंध के कारण शहरों का विकास हुआ। व्यापारिक केन्द्रों के आन्तरिक धार्मिक क्षेत्रों तथा शिक्षा केन्द्रों में भी शहरों का विकास हुआ इसके साथ ही राजकीय आवश्यकताओं ने भी भारतीय शहरों के आविर्भाव में सहायता प्रदान किया।

वैदिक काल में लोहे की भूमिका:

सिंधु सभ्यता के बाद शहरों का अभाव दिखाई पड़ता है। क्योंकि आर्य सभ्यता मूलतः ग्रामीण सभ्यता थी कालान्तर के शहरों के चतुर्दिक मिलने वाली लकड़ी की चार दिवारी ऋग्वेद कालीन बाँस की चार दिवारी का उत्तर विकास थी। आर्यों के घर बाँस बल्ले से बनाई जाती थी। प्राचीन राजगृह के घरों के नींव इस बात के प्रमाण हैं कि वहाँ गोलाकार घर बाँस-बल्ले से बनाये जाते थे। पूर्व वैदिक काल की भवनों की दीवारें लकड़ी तथा बाँस की बनी होती थी। उनके ऊपर मिट्टी का लेप चढ़ा दिया जाता था। आर्य सभ्यता तथा सिन्धु सभ्यता में काफी अंतर था। आर्य सभ्यता में शहरी तत्व गौण था पर सैंधव सभ्यता में इसकी प्रधानता थी। लेकिन उत्तर वैदिक काल में इसकी दूसरी शहरी जीवन का विकास शुरू हुआ। जिसमें लोहे कि भूमिका स्पष्ट परिलक्षित होती है। तैत्तिरीय संहिता में शहर शब्द का उल्लेख पुर के अर्थ में हुआ है। पुर शब्द का उल्लेख तैत्तिरिय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। मैकडानल तथा कीथ के अनुसार शहरों का विकास उत्तर वैदिक काल में हुआ। उत्तर वैदिक काल में बनारस, प्रयाग, काशी, कौशल, अवन्ति, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर, काम्पिल्य, कौशाम्बि, अयोध्या आसन्दिवतं जैसे शहरों का विकास हो चुका था। वास्तव में उत्तर वैदिक काल में आर्यों का परिचय शहर एवं शहरी जीवन से हो चुका था।

वैदिक और वैदिकोत्तर काल के समय में अगर हम देखते हैं तो लोहे तकनीकि प्रगति का स्वरूप निर्धारित कर रहा था। अतिरंजखेड़ा की खुदाई से पता चलता है कि लगभग 1300 BC में लोहे की जानकारी प्राप्त हो गई थी। इतिहासकार रोमिला थापर ने लिखा है कि लगभग 1000 BC में भारत में लोहे का इस्तेमाल शुरू हो गया था। उत्पादन तकनीक के प्रगति के फलस्वरूप जहाँ एक ओर सामाजिक संरचनाओं में धातु विज्ञान और लोहे के प्रयोग ने प्रभाव डाला। वहीं दूसरी ओर उत्पादन के पद्धति में परिवर्तन हुए। छठी शताब्दी ई. पूर्व में भौतिक संस्कृति के विकास के साथ-साथ धातु विज्ञान में प्रगति हुई। उत्तर वैदिक ग्रंथ और चित्रित धुसर मृदभांड सदित लोहे वाले पुरातत्व समय लगभग समान है। लोहे के जो औजार गंगा के उत्तरी मैदान में तथा मध्य गंगा के मैदानी इलाकों में प्रयोग में लाये जाने लगा ऐसी स्थिति में, छठी शताब्दी ई. पू. में इतिहास के सभी अंगों में परिवर्तन हुए।

लगभग 700 ई. पूर्व में भारतीयों के भौतिक जीवन में परिवर्तन के मुख्य कारण था लोहे का प्रयोग का प्रारंभ होना। अतिरंज खेड़ा के एक कार्बन-14 तिथि लोहे के प्रारंभ होने के लगभग 1000 ई. पू. इंगित करती है। राजघाट से प्राप्त लोह मल यह संकेत देता है कि लगभग 700 ई. पूर्व में यहाँ उपकरण निर्माण के लिए लोह अयस्क लाया गया था। इसी प्रकार वाराणसी जिले के प्रछलादपुर में संभवतः लगभग 500 के पूर्व में लोहे के प्रारंभ का संकेत मिलता है। 7 वीं, छठी शताब्दी पूर्व में चिरांद नामक स्थल में लोहे के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं तथा वैशाली में लोहमल मिले हैं। गया जिले के सोनपूर स्थल में लौह अयस्क के पिण्ड तथा लोहमल प्राप्त हुए हैं। भागलपुर जिले में चम्पा के प्राचीन स्थल में अनेक लोहमल के पिण्ड प्राप्त हुए हैं। यह सब इस बात की ओर संकेत करते हैं कि छठी से 5वीं शताब्दी ई. पूर्व में भारत में लौह धातु अभियांत्रिकी में पर्याप्त विकास हुआ था। बौद्ध साहित्यों में लोहे के फाल, कुल्हारी, दशांत, आदि उपकरणों की चर्चाएँ हैं।

लोहे के फाल के उरांत फाबड़ा आदी के प्रयोग पर आधारित कृषि के परिणाम स्वरूप बड़ी मात्रा में उत्पादन अधिशेष उपलब्ध होने लगा जो पत्थर अथवा ताम्बे के उपकरणों से प्राप्त करना संभव नहीं था। इसने भारत में लगभग 600 BC में शहरी बस्तियों की विकास की पृष्ट-भूमि तैयार की।" पालि ग्रंथों में 20 शहरों की चर्चा है। पुरातात्विक साक्ष्य के अनुसार कम से कम 10 शहरी स्थल, चम्पा, राजगृह, पाटलिपुत्रा, वैशाली, वाराणसी, कौशाम्बि, कुशीनगर तथा श्रावस्तिका समर्थन प्रांरभिक पालि ग्रंथों से भी होता है इसके अतिरिक्त चिरांद श्रृंगवेरपुर, पिपरहवा तथा तिलौराकोट का भी उल्लेख मिलता है। लौरियानंदन गढ़ के अवशेष भी शहर होने के प्रमाण देते हैं। शहर की उत्पति के कारण चाहे जो भी रहा हो यह अंततोगत्वा एक मंडी बन गया।

उत्तरवैदिक काल में आर्यों का परिचय शहरी जीवन से हो चुका था। उसने शहर निर्माण मूल निवासियों से सिखा होगा। उत्तर वैदिक काल में आर्यों की युद्ध क्रिया समाप्त हो गई तथा व्यवस्थित जीवन का शुभारंभ हुआ। इस कारण इन लोगों ने स्थायी गृहों और बस्तियों की कल्पना की, जिनका आधार एवं आदर्श इन लोगों ने मूल निवासियों के भवनों एवं शहरों को बनाया। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके विन्यास में आर्यों ने इन लोगों की सहायता भी ली थी, क्योंकि इस क्षेत्र में इनकी गति विशेष थी।

अधिकांश देशों और युगों में साक्षरता और अंतः संस्कृति का विकास शहरी जीवन में प्रतिबिम्वित समृद्धि और भौतिक विकास पर आधारित रहा है। पुरुषार्थ के अर्थ और काम का उत्कर्ष शहरी जीवन का अवलम्बि हुआ। राजनैतिक और आर्थिक प्रगति तथा शिल्प कला एवं विद्या का बहुमुखी विकास छठी शताब्दी ई. पूर्व से 200 ई. पूर्व तक शहर और शहरी जीवन के विकास के साथ ही सम्पन्न हुआ। कला एवं विज्ञान

के अधिक विकास के लिए आर्थिक समृद्धि तथा राजकीय ऐश्वर्य का जितना आपेक्षित है उतना वाणिज्य एवं व्यवसाय पर आधारित शहर एवं शहरी जीवन में ही संभव है। वास्तव में भारतीय सभ्यता संस्कृति के प्रायः समस्त मूल्यवान उपादानों का केन्द्र शहरी जीवन ही रहा है।

छठी शताब्दी ई. पूर्व से दुसरी शताब्दी ई. पूर्व तक में लोहे की भूमिका:

छठी शताब्दी ई. पूर्व से दुसरी शताब्दी ई. पूर्व तक शहर एवं शहरी जीवन के विकास में लोहे की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। जिसके मानक तत्व के रूप में भौतिक, संस्कृति एवं लौह अयस्क को मानते हैं। लगभग 600 से 322 ई. पू. तक का काल अर्थव्यवस्था में महत्ववपूर्ण परिवर्तन का सूचक माना जा सकता है। कुछ अन्य तत्वों ने भी इस परिवर्तन को गति और मजबूती प्रदान की, जैसे लोहे का दूर-दूर तक इस्तेमाल, चावल, ईख और कपास की विस्तृत क्षेत्र में खेती, मध्य गंगा के मैदानों में विभिन्न शहरों का उदय एवं विकास, हस्तशिल्पों का और अधिक विभेदीकरण तथा उनका श्रेणियों में गठन, और अंत में (लेकिन इसका महत्व किसी प्रकार कम नहीं है) तेज स्थानीय एवं दूरस्थ व्यापार जिसकी पुष्टि आहत सिक्कों की विभिन्न खोजों से होती है।

पुरातात्त्विक दृष्टि से छठी शताब्दी ई० पू० से उत्तरी काले पालिशदार मिट्टी के बर्तन वाले चरण की शुरुआत होती है। इसकी विशेषता थी इन चमकदार मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल, युद्ध और उत्पादन दोनों के लिए लोहे की चीजों का उपयोग और कर वसूली तथा वस्तुओं के लेन-देन के लिए आहत सिक्कों का चलन। ये सारी नई बातें मुख्य रूप से मध्य गंगा द्रोणी में या फिर पूर्वी उत्तर प्रदेश और कछारी बिहार में दिखाई देती हैं, किंतु साथ ही ये उच्च गंगा द्रोणी और मालवा क्षेत्र तक भी पाई जाती है।

मध्य गंगा के कछारी क्षेत्र में जंगलों को साफ किए बिना कृषि विस्तार में एकाएक इतनी तेजी नहीं आ सकती थी। इस क्षेत्र में भारी वर्षा होती है। यह ठीक है कि जंगल जलाए जा रहे थे किंतु जमीन को खेती योग्य बनाने के लिए (जिन पर बस्तियाँ निर्भर थीं) पेड़ों के उन ठूंठों को काट या निकाल फेंकना जरूरी था जिनकी शिराएँ इस क्षेत्र में दूर तक फैलती हैं। लोहे की कुल्हाड़ी या कुदाल के उपयोग के बिना यह सब आसानी से हो सकता था, यह कल्पनातीत है। छोटे-छोटे भूखंडों पर खेती करने के लिए कुदाल या फावड़े का उपयोग किया जाता होगा, किंतु फावड़े की मदद से इनते बड़े स्तर पर खेती करना संभव नहीं था जिसके आधार पर असंख्य गाँवों और अनेक शहरों का उदय हुआ। न लकड़ी की फाल की मदद से ही यह संभव था जो उच्च गंगा द्रोणी की भुरभरी, दुमट मिट्टी में तो चल सकती थीं किन्तु पटना की चिपचिपी मिट्टी (केवाल) में नहीं क्योंकि यह लोहे की फाल से ही टूट सकती थी। बुद्धकालीन साहित्यिक मूल पाठ, जैसा कि आगे दर्शाया गया है, लोहे की फाल के उपयोग के बारे में कोई आंशका नहीं छोड़ते। किन्तु अब तक दो ही फाल मिली हैं-एक कौशांबी से और दूसरी वैशाली क्षेत्र से। इनमें से वैशाली क्षेत्र से प्राप्त फाल

मध्य गंगा क्षेत्र में परवर्ती उत्तरी काले पालिशदार भाँड वाले चरण की है। बहरहाल, सकोटर कुल्हाड़ियाँ और उत्पादन के उद्देश्य से निर्मित कुछ अन्य उपकरण भी मिले हैं।

शहरों के विकास में लोहे की भूमिका:

बड़ी संख्या में लोहे की वस्तुएँ कौशांबी, प्रहलादपुर, बनारस और मसोन में (सभी पूर्वी उत्तर प्रदेश में) और चिरांद, वैशाली, पटना, सोनपुर और चंपा में (सभी बिहार में) मिली हैं। इनमें से काफी चीजें 300 ई. पू. के पहले उत्तरी काले पालिशदार भाँड वाले चरण की है।

कौशांबी में कुल्हाड़ी, बसूला (तक्षणी), चाकू, छुरी, काँटे, हँसिया आदि अनेक लौह उपकरण मिले हैं, जो उत्तरी काले पालिशदार भाँड वाले चरण के आरंभिक स्तरों के हैं। इसी चरण के समानांतर कालावधि की कुछ कुल्हाड़ियाँ गया जिले के अंतर्गत सोनपुर में भी मिली हैं। चित्रित धूसर मृद्भाँड चरण के द्वितीय काल से संबंधित एक फाल की सूचना पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी एटा जिले के अंतर्गत जखेरा गाँव से मिली है।" यह संभवतः प्रथम सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य भाग का होगा। रोपड़ में अहाते के कुएँ में एक लोहे की फाल मिली है, जो आरंभिक उत्तरी काले पालिशदार
भाँड वाले चरण की हो सकती है। जब ग्रामीण बस्तियों की खुदाई होगी तो हम मध्य गंगा क्षेत्र में इस तरह के फालों की उचित ही प्रत्याशा कर सकते है। अभी यह स्पष्ट है कि मध्य गंगा द्रोणी के लोगों को दक्षिण बिहार में लोहे के प्रचुर स्रोत की जानकारी थी, क्योंकि बनारस से प्राप्त उत्तरी काले पालिशदार भांड वाले चराण के कुछ उपकरणों में वही अशुद्धताएँ देखने में आई हैं जो सिंहभूम तथा मयूरभंज के लौह अयस्क में पाई गई हैं।

बौद्ध धर्म के जीवहिंसा न करने के सिद्धांत और वैदिक यज्ञों के खिलाफ प्रतिक्रिया से पशुधन की सुरक्षा में मदद मिली। यह सुरक्षा कृषि के विकास के लिए बहुत जरूरी था। एक बौद्ध ग्रंथ में यह बताया गया है कि अनाज, शक्ति, सौंदर्य तथा प्रसन्नता का स्रोत गाय है, अतः मांस के लिए उनका हनन नहीं किया जाना चाहिए। एक धर्मशास्त्र में भी उनके महत्व को रेखांकित किया गया है। इसके अनुसार दूध देने वाली गाय या भारवाही बैल का वध करने के लिए चान्द्रायण के कठोर प्रायश्चित का विधान है" पालि तथा वैदिक ग्रंथों" में गोहत्या के अनेक संदर्भों को देखते हुए इसे आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ और स्वागत योग्य कदम माना जाना चाहिए। पशु लोगों की व्यक्तिगत संपति थी। किंतु वैदिक काल की तरह ही चरागाह और जंगल सामान्य संपत्ति थे।

जंगल साफ करके कृषि योग्य भूमि का विस्तार करने की कोशिशें मौर्यपूर्व काल में भी जारी रहीं। एक स्मृतिकार ने यह व्यवस्था दी है कि कृषि का विस्तार करने और यज्ञ संपन्न करने के लिए राजा फल-फूल वाली वृक्षों को काट सकता है।" इस उद्देश्य के लिए जंगलों को जलाने की प्रथा पहले से जारी थी, जैसा कि जैन धर्मसूत्र के एक अंश पर अभयसूरि की टीका से प्रकट होता है। परती भूमि को खेती के तहत लाने की पहल राज्य अथवा जनसमुदाय की तरफ से की जाती थी।

प्राक् मौर्यकाल की एक खास विशेषता है शहरी अर्थव्यवस्था का विकास। लगभग 1000 साल के अंतराल के बाद यह अर्थव्यव्सथा भारत में फिर से प्रकट होती है और पहले-पहल 600 ई. पू. के आसपास मध्य गंगा के मैदानों में इसका उदय होता है। साधुओं के भिक्षाटन के संदर्भ में एक जैन धर्मग्रंथ में विभिन्न प्रकार की नगर बस्तियों का उल्लेख किया गया है, जैसे करमुक्त नगर, मिट्टी का प्राचीरवाला नगर, छोटी-प्राचीरवालानगर, अलग-अलग नगर, विशाल नगर, समुद्रतटीय नगर और राजधानी। हमें आगे यह भी पता चलता है कि अरिस्टोव्युलुसकोसिकंदर के आदेश से एक ऐसे क्षेत्र में भेजा गया जो सिंधु नदी द्वारा मार्ग बदलकर पूर्व की ओर चले जाने के कारण रेतिगस्तान में परिणत हो गया था। पूरे देश में इस काल के दौरान कुल मिलाकर प्रसिद्ध शहरों की संख्या साठ निर्धारित की गई है, जो पूर्व में चंपा से लेकर पश्चिम में भृगुकच्छ तक, और दक्षिण में कावेरिपट्टन से लेकर उत्तर में कलिपवस्तु तक फैले हुए थे। श्रावस्ती जैसे बड़े शहर संख्या में बीस थे जिनमें से कुछ तो बुद्ध की कार्यस्थली होने के नाते काफी महत्वपूर्ण थे। इनके नाम हैं चंपा, साकेत, कौशांबी, बनारस और कुशीनगर। पाटलिपुत्र की महानता का चरण अभी आना शेष था।

उस समय कई शहर कलाओं तथा शिल्पों की वजह से महत्वपूर्ण थे इसीलिए परवर्ती ग्रंथां में राजगृह के अठारह शिल्पि श्रेणियों का उल्लेख किया गया है। बौद्ध धर्म ग्रंथों में राजगृह के अठारह शिल्पी श्रेणियों का उल्लेख किया गया है। बौद्ध धर्म ग्रंथों में उल्लिखित परंपरागत अठारह शिल्पि श्रेणियों में से यहाँ केवल चार अर्थात् काष्ठकारों, लुहारों, चर्मकारों और चित्रकारों का उल्लेख है। हर शिल्पिश्रेणी का अपना मुखिया और अपने नियम-कानून होते थे। दो जातक (बुद्ध के जन्म से संबंधित) कथाओं में, दो मौकों पर, राजकीय शोभायात्रा में अठारहों शिल्पि श्रेणियों के शामिल किए जाने का उल्लेख है, जिसका आशय यह हुआ कि राजा का उनके ऊपर किसी न किसी तरह का सामान्य नियंत्रण रहता था। शायद भाण्डागारिक (जो बनारस में कोषाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित था) राजा की तरफ से ऐसी सभी श्रेणियों की देख रेख करता था। उद्योग और व्यापार को सेट्ठि सँभालते थे। वे आम तौर पर शहरों में रहते थे किंतु साथ ही गाँव में रहने वाले अपने छोटे-छोटे सेठों से भी संपर्क-संबंध रखते थे। सेट्ठियों में विभिन्न स्तर जैसे उच्च और निम्न आदि होते थे। विशेष सम्मान व्यक्त करने के लिए सेट्ठि की उपाधि राजा द्वारा प्रादन की

जाती थी। ऐसे सेट्ठियों को भोगगाम अर्थात् अपने रख-रखाव के लिए गाँवों का राजस्व भी अनुदान के रूप में दिया जाता था।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि मौर्यपूर्व युग में हम उत्तर भारत में, विशेष रूप से मध्य गंगा के मैदानों में (जहाँ बीच-बीच में अनेक शहर भी थे), कृषक बस्तियों को उभारता हुआ देखते हैं। ग्रामीण विस्तार और नगरीकरण में राज्य की ठीक-ठीक भूमिका क्या थी, यह स्पष्ट रूप से नहीं बताया जा सकता। यह सुझाया गया है कि आहत सिक्के मगध और कोसल के राजवंशों ने जारी किए थे। इस संभावना को नकारा नही जा सकता, किंतु फिर भी सिक्कों को विशेष शासकों के साथ जोड़ना कठिन होगा। शासकों ने अन्य आर्थिक गतिविधियों में अपनी दिलचस्पी दिखाई, जैसे जंगलों को साफ करना, भू-व्यवस्था के बारे में कानून बनाना और शिल्पि संघों का पर्यवेक्षण। ऐसी स्थिति में संबंद्ध राज्य की राजधानियों को विशाल बाजार में विकसित होना ही था। साथ ही पुरोहितों, योद्धाओं और संपन्न व्यापारियों के आडंबरपूर्ण जीवन की माँग पूरी करने के लिए सुदूर-व्यापार भी जरूरी था। किंतु हम यह नहीं बता सकते कि क्या शासकों ने प्रत्यक्ष रूप से व्यापार और नगरीकरण में योग दिया। फिर भी, जो लोग विशाल भवनों में रहते थे और प्रतिष्ठिासूचक पदार्थों का प्रयोग करते थे उनके हाथ में सामाजिक नेतृत्व देकर इन दोनों तत्त्वों (व्यापार तथा नगरीकरण) ने राज्य व्यवस्था को मजबूत बनाया होगा।

सन्दर्भ:

1. मार्शल, मोहनजोदाड़ो एण्ड इण्डस सिभिलाईजेशन, पृष्ठ 110-111.
2. पीगट, प्री-हिष्टारिका इण्डिया, पृष्ठ-216.
3. तैत्तिरिय संहिता, 1, 2, 18, 31, 4.
4. वैदिक इण्डेक्स, जिल्द 1, पृष्ठ 539.
5. वैदिक इण्डेक्स, जिल्द 2, 151, 1, 72.
6. थापर रोमिला, प्राचीन भारत, पृष्ठ 26-27
7. थापर रोमिला, प्राचीन भारत, पृष्ठ 27-27
8. शर्मा रामशरण, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं समाजिक संरचनाएँ पृष्ठ-23
9. शर्मा जी. आर. हिस्ट्री प्रि-हिस्ट्री इलाहाबाद 1980, पृष्ठ 85-87
10. द बुक ऑफ डिसिप्लिन (विनय पिटक), 55 IV (महाबग) अनु. आई. बी. हार्नर, सेक्रेड बुक्स ऑफ द बुधिष्ट, जिल्द 14 लंदन 1951, पृष्ठ 307
11. शर्मा रामशरण, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ पृष्ठ 173
12. वही, पृष्ठ 174
13. राय उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर एवं नगर जीवन इलाहाबाद 1965 पृष्ठ-14
14. इंडियन आर्कीयोलॉजि 1974-75 ए रिव्यू (साइक्लोस्टाइल की हुई प्रति)। पृष्ठ 1-10
15. पाणिनि, VIII.3.47. उवासगरसाओ, संपा० ए० एफ० रुडॉल्फ होर्नले, कोलकाता, 1890, पृष्ठ 108.
16. एसके दास, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, कोलकाता 1944, पृष्ठ 110-11